Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2019: 6.251, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, JUNE-JULY, 2020, VOL- 8/40

साहित्य एवं यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में 'मृच्छकटिकम्'

डॉ. सीमा रानी शर्मा
संस्कृत विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

शूद्रक का 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत नाटक साहित्य में एक अद्‌भुत रचना है। इसमें समाज के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें जनजीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। संस्कृत की पुरातन परम्परा के विरुद्ध राजा के स्थान पर एक सामान्य व्यक्ति इस कथा का नायक है। मृच्छकटिकम् की कथावस्तु लौकिक है। यह वस्तुतः जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा विरचित है। जनजीवन का जितना विस्तृत एवं वास्तविक व व्यापक चित्रण 'मृच्छकटिकम्' में मिलता है उतना अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। इसमें तत्कालीन समाज का यथार्थ प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। उसकी राजनैतिक दशा, सामाजिक अव्यवस्था आदि का वर्णन मिलता है। 'मृच्छकटिकम्' की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्य संस्कृत नाटकों में प्राप्त नहीं होतीं। यही यथार्थ को दर्शाने वाली विशेषताएँ इसे अन्य से भिन्न करती हैं। संस्कृत साहित्य के इस नाटक में पहली बार सभी वर्गों के पात्रों का समावेश हुआ है। लेखक ने आदर्श पात्रों के साथ जीवन और जगत के यथार्थ पात्रों का समन्वय बड़ी कुशलता से किया है।

इस प्रकरण के रचयिता के रूप में प्रस्तावना में राजा शूद्रक का नाम आता है, जिनका परिचय सूत्रधार के मुख से नाटक के आरम्भ में ही इस प्रकार कराया गया है —

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च ।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥ (मृच्छकटिकम् १/३)
ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ।
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ॥ (मृच्छकटिकम् १/४)

इन श्लोकों के अनुसार शूद्रक गजराज की-सी गति, चकोर-सदृश नेत्र और पूर्णचन्द्र के समान मुख वाले श्रेष्ठ द्विज कवि थे। उन्होंने ऋग्वेद, सामवेद, गणित, वैशिकी कला (गणिका-विद्या) तथा हस्तिशिक्षा में निपुणता प्राप्त की, अश्वमेध यज्ञ किया, सौ वर्ष दस दिन की आयु

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

पाई और पुत्र को राज्य सौंपकर अग्नि में प्रवेश किया। स्वयं अपनी मृत्यु का वर्णन कवि द्वारा किया जाना स्वाभाविक नहीं लगता, इसी कारण कीथ आदि अनेक विद्वान इस अंश को किसी परवर्ती संशोधक की देन मानते हैं [2, 3]। शूद्रक की ऐतिहासिक पहचान तथा नाटक के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है; विभिन्न मतों के अनुसार इसे ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से लेकर ईसा की पाँचवीं शताब्दी के मध्य रखा जाता है [4, 5, 9]। भास के अपूर्ण नाटक 'चारुदत्त' (चार अङ्क) और 'मृच्छकटिकम्' (दस अङ्क) की कथावस्तु में विलक्षण साम्य है, इसलिए प्रायः यह माना जाता है कि शूद्रक ने भास की इस कथा को ही विस्तार देकर अपनी मौलिक प्रतिभा से एक पूर्ण सामाजिक प्रकरण का रूप दिया [6]।

संस्कृत नाट्यशास्त्र की दृष्टि से 'मृच्छकटिकम्' दस रूपकों में परिगणित 'प्रकरण' है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र (अध्याय १८) में नाटक और प्रकरण का भेद स्पष्ट किया गया है — नाटक की कथा इतिहास-पुराण-प्रसिद्ध तथा नायक राजर्षि या दिव्य पुरुष होता है, जबकि प्रकरण की कथा कवि-कल्पित एवं लौकिक होती है। धनञ्जय ने 'दशरूपक' में प्रकरण का लक्षण इस प्रकार दिया है —

प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लौकिकं कविः ।
अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ॥ (दशरूपक, तृतीय प्रकाश)

अर्थात् प्रकरण में कवि लौकिक कथा की स्वयं उद्भावना करता है और अमात्य, विप्र अथवा वणिक् में से किसी एक को नायक बनाता है। चारुदत्त ब्राह्मण भी है और वणिक् भी, अतः वह इस लक्षण पर पूर्णतः खरा उतरता है। नाट्यशास्त्र में नाट्य को लोकवृत्त का अनुकरण कहा गया है और उसके स्वरूप के विषय में भरत की यह उक्ति प्रसिद्ध है —

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥ (नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय)
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥ (नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय)

सुख-दुःख से युक्त लोक-स्वभाव ही नाट्य का मूल है और ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला या कर्म नहीं जो नाट्य में दिखाई न दे — भरत की इस स्थापना का सर्वाधिक सजीव उदाहरण 'मृच्छकटिकम्' है, जिसमें जुआरी, मालिश करने वाला, चोर, गणिका, न्यायाधीश, कायस्थ, श्रेष्ठी, बौद्ध भिक्षु और राजकर्मचारी तक सभी अपनी-अपनी बोली-बानी के साथ उपस्थित हैं।

नाटक की कथा संक्षेप में इस प्रकार है। उज्जयिनी का निवासी चारुदत्त उदार एवं गुणी ब्राह्मण सार्थवाह है, जो दान देते-देते दरिद्र हो चुका है। नगर की प्रसिद्ध गणिका वसन्तसेना

उसके गुणों पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करने लगती है। राजा पालक का साला संस्थानक (शकार) बलपूर्वक उसे पाना चाहता है, किन्तु वसन्तसेना उसे ठुकरा देती है। प्रथम अङ्क 'अलङ्कारन्यास' में वह अपने आभूषण चारुदत्त के घर धरोहर रख आती है; तृतीय अङ्क में चोर शर्विलक उन्हें चुरा लेता है और चतुर्थ अङ्क में वह इन्हीं गहनों से वसन्तसेना की दासी मदनिका को दासता से मुक्त कराता है। षष्ठ अङ्क में चारुदत्त का पुत्र रोहसेन पड़ोसी बालक की सोने की गाड़ी देखकर मिट्टी की गाड़ी से खेलना नहीं चाहता, तब वसन्तसेना अपने आभूषण उस मिट्टी की गाड़ी में रख देती है — इसी घटना से नाटक का नाम 'मृच्छकटिकम्' पड़ा। अष्टम अङ्क में शकार वसन्तसेना का गला घोंटकर उसे मरा समझ छोड़ देता है और नवम अङ्क 'व्यवहारदर्शन' में उलटे चारुदत्त पर हत्या का अभियोग लगाकर भ्रष्ट न्यायालय से उसे प्राणदण्ड दिलवा देता है। वध-स्थल पर जीवित वसन्तसेना बौद्ध भिक्षु (पूर्व-संवाहक) की सहायता से पहुँच जाती है और चारुदत्त के प्राण बचते हैं। इसी बीच गोप-पुत्र आर्यक राजा पालक को मारकर सत्ता प्राप्त कर लेता है, चारुदत्त को पुरस्कृत करता है और वसन्तसेना को वधू-पद प्रदान किया जाता है। इस प्रकार एक ओर प्रेम और त्याग की कथा है तो दूसरी ओर राजनैतिक क्रान्ति की, और दोनों के ताने-बाने में तत्कालीन समाज का सम्पूर्ण चित्र उभर आता है।

सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्यांकन के लिए मृच्छकटिकम् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नाटक है। इस समय समाज भिन्न-भिन्न सा हो रहा था। जाति व्यवस्था कठोर हो चली थी, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था लागू थी और जातिगत अभिमान भी उत्पन्न हो गया था। ब्राह्मणों का स्थान उच्चतम था और उन्हें आदरणीय माना जाता था। ब्राह्मण वैश्यों का कार्य व्यापार भी करते थे व कुछ ब्राह्मण चोरी भी करते थे। स्त्रियों के दो वर्ग थे – कुलवधू एवं गणिका। समाज में विवाह का महत्त्वपूर्ण स्थान था। राजा लोग रंगीली स्त्री रखते थे। जुआ वैध कार्य में था, जुए में हारकर रुपया न देने पर न्यायालय में मुकदमा चलता था। उस समय दास प्रथा भी थी एवं मदिरापान की प्रथा थी एवं मदिरालय भी थे। देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। उन सभी सामाजिक दशाओं को 'मृच्छकटिकम्' में बड़े ही यथार्थ रूप से चित्रित किया गया है।

वर्ण-व्यवस्था की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि वैदिक एवं स्मृति-साहित्य में मिलती है। मनुस्मृति में वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है —

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ (मनुस्मृति १/३१)

जबकि श्रीमद्भगवद्गीता में वर्ण-विभाग का आधार गुण और कर्म बताया गया है — 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' (गीता ४/१३)। शास्त्र में आदर्श रूप से चाहे जो कहा गया हो,

'मृच्छकटिकम्' का समाज यह दिखाता है कि व्यवहार में जन्मगत श्रेष्ठता का अभिमान प्रबल हो चुका था, परन्तु कर्म की दृष्टि से वर्णों की सीमाएँ टूट भी रही थीं। नाटक का नायक चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी सार्थवाह (व्यापारी) है, और शर्विलक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भी निर्धनता तथा प्रेम की विवशता में सेंध लगाकर चोरी करता है। यही द्वन्द्व नाटककार की यथार्थदृष्टि का सबसे सशक्त प्रमाण है कि वह आदर्श के आवरण में समाज की कमजोरियों को छिपाता नहीं, बल्कि उन्हें पात्रों के आचरण द्वारा स्वतः उजागर होने देता है [8, 9]।

जुए का वर्णन द्वितीय अङ्क में अत्यन्त जीवन्त रूप में हुआ है, जहाँ संवाहक, द्यूतशाला का स्वामी माथुर और जुआरी दर्दुर सामने आते हैं। संवाहक जुए में हारकर कर्ज़ न चुका पाने के कारण माथुर आदि से बचता फिरता है और अन्ततः वसन्तसेना की शरण पाता है। जुए की यह बुराई भारतीय चिन्तन में अत्यन्त प्राचीन काल से लक्षित की जाती रही है। ऋग्वेद के 'अक्षसूक्त' में एक जुआरी अपनी व्यथा कहता है और अन्त में उसे यह उपदेश दिया जाता है —

> *अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः । (ऋग्वेद १०/३४/१३)*

अर्थात् पासों से मत खेल, खेती कर और अपने परिश्रम से प्राप्त धन में सन्तोष मान। मनुस्मृति में तो राजा को यह निर्देश दिया गया है कि वह द्यूत और समाह्वय (पशु-पक्षियों की बाजी) को अपने राष्ट्र से निवारित करे, क्योंकि ये दोनों राजा के लिए विनाशकारी दोष हैं —

> *द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ।*
> *राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ (मनुस्मृति ९/२२१)*

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी द्यूत-संचालन राज्य के नियन्त्रण में रखने का उल्लेख (३/२०) तथा सुराध्यक्ष (२/२५) और गणिकाध्यक्ष (२/२७) जैसे अधिकारियों का वर्णन मिलता है [16]। इससे स्पष्ट है कि 'मृच्छकटिकम्' में चित्रित द्यूत, मदिरापान और गणिका-जीवन कवि की कोरी कल्पना नहीं, बल्कि तत्कालीन नागरिक जीवन की स्वीकृत और नियन्त्रित संस्थाएँ थीं। दास-प्रथा का चित्र भी नाटक में मिलता है; मदनिका वसन्तसेना की दासी है जिसे शर्विलक मुक्त कराना चाहता है, और स्थावरक जैसे सेवक पात्र स्वामी-सेवक सम्बन्धों के विविध पक्ष सामने रखते हैं। आर्थिक सम्पन्नता का संकेत वसन्तसेना के वैभवशाली भवन के वर्णन, बहुमूल्य आभूषणों तथा नगर के उत्सवी वातावरण से मिलता है।

स्त्रियों की स्थिति के विषय में स्मृतियों का दृष्टिकोण द्वैध है। एक ओर मनु का कथन है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' (३/५६), तो दूसरी ओर वही यह भी कहते हैं कि बाल्यावस्था में पिता, यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्रों के अधीन रहकर स्त्री स्वतन्त्रता का आश्रय न ले — 'बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने' (५/१४८)। 'मृच्छकटिकम्' की वसन्तसेना इस रूढ़ धारणा को चुनौती देती है। वह गणिका है, परन्तु अपने प्रेमी का चयन स्वयं करती है, धन के स्थान पर गुणों को महत्त्व देती है, और अन्त में चारुदत्त की वैधानिक पत्नी का पद प्राप्त करती है। वात्स्यायन के कामसूत्र (षष्ठ अधिकरण 'वैशिक') में गणिकाओं की जो वृत्ति वर्णित है, उसके अनुसार धन-अर्जन ही उनका धर्म माना गया है; वसन्तसेना की माता अक्का उसी व्यावसायिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि वसन्तसेना स्वयं उससे ऊपर उठकर प्रेम और चरित्र की प्रतिष्ठा करती है। इस प्रकार कवि ने समाज के प्रचलित ढाँचे का चित्रण भी किया है और उसमें मानवीय सम्भावनाओं की ओर संकेत भी।
शूद्रक ने उस समय की राजनैतिक अवस्थाओं का भी बड़ी ही यथार्थता से चित्रण किया है। राजा बड़े ही दुराचारी एवं विलासी थे। राजाओं के अत्याचारों के प्रति जनता में क्षोभ उत्पन्न हो जाता था। न्याय एवं दण्ड व्यवस्था अत्यन्त अव्यवस्थित थी। शूद्रक ने न्यायाधीशों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनीति की ओर ध्यान आकृष्ट किया है —

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं द्यूतोर्मिसङ्कुलं
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नानाश्वहिंस्रावहम् ।
नानावाशकडुपतिरुचिं कामस्य पर्यासपरं
नीतिद्रुमं तटं न राजकरणं हित्वेह सामुद्रायते ॥

इस प्रसंग को समझने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि नाटक में राजा पालक एक निरंकुश शासक है, जो एक सिद्ध पुरुष की इस भविष्यवाणी से आशंकित होकर कि गोप-पुत्र आर्यक राजा बनेगा, उसे बिना किसी अपराध के बन्दी बना लेता है। राजा का साला संस्थानक (शकार) अपने पद के मद में अन्धा होकर वसन्तसेना की हत्या करता है और फिर न्यायालय में निर्दोष चारुदत्त पर ही हत्या का आरोप मढ़ देता है। अधिकरणिक (न्यायाधीश), श्रेष्ठी और कायस्थ की सभा में साक्ष्य और विवेक की अपेक्षा सत्ता का दबाव निर्णायक सिद्ध होता है। शास्त्रीय विधान के अनुसार ब्राह्मण को किसी भी पाप में प्रवृत्त होने पर भी मृत्युदण्ड नहीं दिया जाना चाहिए, उसे धन-सहित राज्य से निर्वासित किया जा सकता है — 'न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्' (मनुस्मृति ८/३८०); परन्तु नाटक में राजाज्ञा के सामने यह विधान भी निष्प्रभावी दिखाई देता है। मनुस्मृति में दण्ड को ही प्रजा का शासक और रक्षक कहा गया है — 'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति' (७/१८)

— किन्तु जब दण्ड का प्रयोग स्वयं पक्षपात का साधन बन जाए तो राज्यव्यवस्था के प्रति जनता का असन्तोष स्वाभाविक है। कौटिल्य का राजधर्म-विषयक आदर्श इसके सर्वथा विपरीत है —

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ (अर्थशास्त्र १/१९/३४)

शूद्रक ने इसी आदर्श और यथार्थ के अन्तर को आर्यक-क्रान्ति के रूप में सामने रखा है, जिसमें प्रजा का असन्तोष पालक के पतन का कारण बनता है और चारुदत्त की निर्दोषता सिद्ध होती है। यह नाटक का राजनैतिक सन्देश है कि अत्याचारी सत्ता स्थायी नहीं होती।

नाटककार ने जीवन में निर्धनता कितनी दुखद होती है इसका मार्मिक प्रतिपादन चारुदत्त के शब्दों में किया है कि दरिद्र व्यक्ति की बात उसके बन्धु बान्धव भी नहीं सुनते। अभिन्न मित्र विमुख हो जाते हैं, निर्धन का कोई संग नहीं चाहता, न ही आदर से कोई बोलता है एवं निर्धनता चिन्ताओं का आश्रय है —

निवासश्चिन्तायाः परिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजनविद्वेषकरणम् ।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात् परिभवतो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ॥ मृ. १/१५

निर्धनता और धन की महिमा का यह द्वन्द्व भारतीय नीति-साहित्य में बार-बार आया है। भर्तृहरि का प्रसिद्ध नीतिवचन है कि जिसके पास धन है वही कुलीन, पण्डित, शास्त्रज्ञ, गुणज्ञ, वक्ता और दर्शनीय माना जाता है, क्योंकि सारे गुण स्वर्ण का ही आश्रय लेते हैं —

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ (भर्तृहरि, नीतिशतक)

चारुदत्त की स्थिति इस नीति-वचन की जीवन्त व्याख्या है। जब तक उसके पास धन था, मित्रों और याचकों की भीड़ थी; दरिद्र होते ही वही लोग विमुख हो गए। फिर भी नाटककार ने चारुदत्त के चरित्र में गरिमा बनाए रखी है — उसे अपनी दरिद्रता का दुःख धन के जाने से अधिक इस बात का है कि अब वह अतिथियों और याचकों की सेवा नहीं कर पाता। यही कारण है कि उसके दुःख से पाठक में करुणा उत्पन्न होती है और वसन्तसेना का उससे प्रेम स्वाभाविक प्रतीत होता है।

इस वर्णन में यथार्थ है, कोई भुक्तभोगी ही इतनी ईमानदारी से स्वरूप को व्यक्त कर सकता है। वसन्तसेना के इस कथन से स्त्री स्वभाव का सुन्दर चित्रण किया गया है कि अपने प्रेमी से मिलने जाती हुई स्त्रियों को कोई रोक नहीं सकता —

गर्ज वा वर्ष वा शक्र, मुञ्च वा शतशोऽशनिम् ।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ॥ पृ. ५/३१

यह श्लोक पञ्चम अङ्क 'दुर्दिन' का है, जिसमें घनघोर वर्षा और बिजली की कौंध के बीच वसन्तसेना चारुदत्त से मिलने निकल पड़ती है। संस्कृत कवियों ने अभिसारिका नायिका का चित्रण प्रायः श्रृंगार-रस की परम्परागत सजावट के साथ किया है, किन्तु शूद्रक की वसन्तसेना का यह साहस आलंकारिक न होकर चरित्रगत है; वह प्रेम के लिए प्रकृति की प्रतिकूलता को भी तुच्छ समझती है। इस अङ्क में प्रकृति-वर्णन और पात्र की मनःस्थिति एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं, जो नाट्यकला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट प्रयोग है [2, 3]।
'मृच्छकटिकम्' में मनोभावों की अभिव्यक्ति बड़े ही यथार्थ रूप से की गई है, ऐसा लगता है कि नाटककार मानव मन के अच्छे पारखी थे। तभी तो चोर के शंकित हृदय का सुन्दर चित्रण दर्शनीय है —

यः कश्चित् त्वरितं गतिं निरीक्षते मां सम्भ्रान्तं द्रुतमुपसर्पति हितंवा ।
तं सर्वं तुलयामि दूषितोऽन्तरात्मा हतोऽहं बिभर्ति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥

अपराधी मनुष्य की मनोवैज्ञानिक दशा यह है कि उसे हर चलता हुआ और हर देखता हुआ व्यक्ति अपना अनुसन्धानकर्ता प्रतीत होता है, और उसका अपना दूषित अन्तःकरण ही उसे भयभीत रखता है। यह मनोविश्लेषण इतना सहज है कि आज का पाठक भी इसमें अपने अनुभव की झलक देख लेता है। यहीं नाटककार का वह कौशल दिखाई देता है जिसके कारण अपराधी भी केवल घृणा का पात्र नहीं रहता, वह एक संवेदनशील और परिस्थितियों से विवश मनुष्य के रूप में सामने आता है।
पात्र-योजना की दृष्टि से भी यह नाटक संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। चारुदत्त और वसन्तसेना जैसे आदर्श पात्रों के साथ ही शकार जैसा मूर्ख, अहंकारी और क्रूर राजश्याल, विदूषक मैत्रेय जैसा निश्छल मित्र, शर्विलक जैसा चोर, संवाहक जैसा जुआरी-से-भिक्षु बना व्यक्ति, चाण्डाल, राजपुरुष, चेट-चेटी और नगर के विट — सभी अपने वास्तविक स्वरूप में मंच पर आते हैं। भाषा की दृष्टि से भी यह नाटक यथार्थ का सजग प्रयोग है। नाट्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार उच्च पात्र संस्कृत बोलते हैं और स्त्रियाँ तथा निम्न वर्ग के पात्र प्राकृत; 'मृच्छकटिकम्' में शौरसेनी के साथ मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शकारी, चाण्डाली और ढक्की जैसी अनेक प्राकृतों का प्रयोग मिलता है, जिससे पात्रों के सामाजिक स्तर और क्षेत्रीय

पहचान का आभास होता है [1, 4]। शकार की बोली तो स्वयं उसके चरित्र का हास्यपूर्ण दर्पण बन गई है। मैत्रेय और शकार के प्रसंगों से हास्य रस की जो धारा बहती है, वह नाटक के श्रृंगार और करुण रस की गम्भीरता को सन्तुलित करती है। इस प्रकार रस-परिपाक की दृष्टि से भी यह प्रकरण श्रृंगार-प्रधान होते हुए करुण और हास्य के सुन्दर मिश्रण का उदाहरण है।

चारुदत्त का चरित्र इस नाटक की नैतिक धुरी है। वह उदार, सत्यनिष्ठ, कृतज्ञ और स्वाभिमानी है। दान देते-देते उसका धन समाप्त हो चुका है, किन्तु उसे अपनी निर्धनता का दुःख अपने लिए नहीं, बल्कि इस बात के लिए है कि अब वह अतिथियों और याचकों का सत्कार नहीं कर पाता। नवम अङ्क के अभियोग-प्रसंग में वह भयभीत होकर भी असत्य का सहारा नहीं लेता और इसीलिए मनु का वह वचन उसके व्यक्तित्व पर पूर्णतः घटित होता है जिसमें सत्य और प्रिय बोलने को सनातन धर्म कहा गया है —

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ (मनुस्मृति ४/१३८)

चारुदत्त के आचरण में निष्काम कर्म की वह भावना भी दिखाई देती है जिसे गीता में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (२/४७) कहकर प्रतिपादित किया गया है; वह दान और उपकार करता है, पर बदले में किसी प्रतिफल की अपेक्षा नहीं रखता। नाटक के अन्त में जब शकार उसके अधीन आ जाता है तो वह उससे बदला नहीं लेता, उसे क्षमा कर देता है — यह क्षमाशील चरित्र उसे पात्र-सामान्य से ऊपर उठाकर आदर्श नायक बना देता है। उसकी पत्नी धूता भी नाटक की एक संयत और गरिमामयी स्त्री-पात्र है, जो अन्त में वसन्तसेना को बहन के रूप में स्वीकार कर लेती है; इससे कवि ने कुलवधू और गणिका के उस भेद को भी कुछ मृदु कर दिया है जिसका उल्लेख सामाजिक परिस्थितियों के प्रसंग में किया जा चुका है।

वसन्तसेना का चरित्र भारतीय साहित्य की सबसे सशक्त नायिकाओं में गिना जाता है। वह धन की स्वामिनी है, पर धन के प्रति अनासक्त है; वह समाज द्वारा नीची दृष्टि से देखे जाने वाले वर्ग में उत्पन्न हुई है, परन्तु उसका हृदय और चरित्र अत्यन्त उच्च है। वह संवाहक को जुए के ऋण से मुक्त कराती है, मदनिका की स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने में सहयोग करती है और चारुदत्त के पुत्र रोहसेन के आँसू देखकर अपने बहुमूल्य आभूषण उसकी मिट्टी की गाड़ी में रख देती है। उसके लिए प्रेम धन से तौला जाने वाला व्यापार नहीं, बल्कि गुणों का सम्मान है। इसी कारण नाटक का अन्त उसे सामाजिक मान्यता देकर होता है — राजा आर्यक के आदेश से वह गणिका-पद से मुक्त होकर वधू का सम्मान प्राप्त करती है। यह

घटना कवि की उस सामाजिक दृष्टि का परिचय देती है जो मनुष्य का मूल्यांकन जन्म या व्यवसाय से नहीं, बल्कि चरित्र से करती है [2, 9]।

शकार इस नाटक का प्रतिनायक है, किन्तु उसका चित्रण केवल दुष्टता तक सीमित नहीं है। वह मूर्ख, अहंकारी, कायर, अशिक्षित और क्रूर है, और उसकी हास्यास्पद डींगें दर्शकों को हँसाती भी हैं और भयभीत भी करती हैं। उसका यह कथन बार-बार आता है कि वह राजा का साला है और उसे कौन दण्ड दे सकता है। सत्ता से जुड़े ऐसे व्यक्ति को दण्ड का भय नहीं होता — यह राजनैतिक यथार्थ आज भी उतना ही सत्य है। गीता का यह कथन कि श्रेष्ठ जन जैसा आचरण करते हैं, सामान्य लोग उसी का अनुकरण करते हैं ('यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः', ३/२१), शासक वर्ग के नैतिक पतन के सामाजिक दुष्परिणाम की ओर संकेत करता है। शकार का सेवक स्थावरक इसका प्रत्युत्तर है; स्वामी के आदेश पर भी वह हत्या में सहभागी बनने से इनकार करता है और बाद में सत्य को प्रकट करता है। इस प्रकार शूद्रक यह दिखाते हैं कि सामान्य जन का विवेक सत्ता के अन्याय के समक्ष अन्तिम आशा है। विट का पात्र भी इसी तरह महत्त्वपूर्ण है, जो शकार का साथी होने पर भी भीतर से अपनी अन्तरात्मा के प्रति जागरूक है और उसके कुकृत्यों में सहमत नहीं होता।

शर्विलक और मदनिका का प्रसंग (चतुर्थ अङ्क) नाटक में जीवन के विविध पक्षों को सामने लाता है। शर्विलक ब्राह्मण युवक है, पर प्रेम की विवशता उसे चोरी तक ले जाती है; यह प्रसंग यह भी बताता है कि अपराध अनेक बार परिस्थितियों की उपज होता है। बाद में वही शर्विलक अपने मित्र आर्यक के उद्धार में सहयोग करता है और क्रान्ति का सहायक बनता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कवि चोर, गणिका और जुआरी जैसे तथाकथित निम्न पात्रों को भी मानवीय सम्भावनाओं से रहित नहीं मानता। संवाहक का पात्र भी इसी दृष्टि का उदाहरण है, जो पहले जुआरियों के चंगुल में फँसता है, फिर वसन्तसेना की कृपा पाकर वैराग्य ग्रहण करता है और बौद्ध भिक्षु के रूप में अन्त में उसी वसन्तसेना के प्राण बचाता है। इस पात्र के माध्यम से नाटक तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता को भी प्रकट करता है; एक ओर शिव की वन्दना और अश्वमेध का उल्लेख है, तो दूसरी ओर बौद्ध विहार और भिक्षु का सम्मानजनक चित्रण। इसी प्रकार चन्दनक जैसे राजपुरुष का चरित्र, जो अपने दायित्व और मानवीय संवेदना के बीच द्वन्द्व अनुभव करता है, यह स्पष्ट करता है कि नाटककार ने शासन-तन्त्र के भीतर भी अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के व्यक्तियों को देखा है।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से 'मृच्छकटिकम्' में दो कथाएँ एक साथ चलती हैं — चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रेम-कथा, जो अधिकारिक या मुख्य वृत्त है, और आर्यक की राजनैतिक क्रान्ति की कथा, जो प्रासंगिक वृत्त के रूप में आरम्भ होकर अन्त में मुख्य कथा के परिणाम

को निर्धारित कर देती है। दोनों कथाओं को जोड़ने वाली कड़ी बैलगाड़ी है। सप्तम अङ्क 'आर्यकापहरण' में आर्यक, चारुदत्त की उसी बैलगाड़ी में छिपकर भागता है, जिसे वसन्तसेना के लिए भेजा गया था। यह संयोग नाटक में मोड़ ले आता है और विदूषक या कोई अन्य पात्र उसका अनुमान भी नहीं करता। इस अङ्क में नाटककार ने कथा के दोनों सूत्र ऐसे गूँथ दिए हैं कि अन्तिम दृश्य में चारुदत्त की प्राण-रक्षा और आर्यक का राज्याभिषेक एक ही समय सम्भव हो जाते हैं। इस प्रकार नाटक की कथावस्तु में उत्सुकता, संघर्ष और समाधान का वह सन्तुलन मिलता है जिसकी अपेक्षा किसी श्रेष्ठ नाटक से की जाती है। नाटक में दृश्यों की विविधता, घटनाओं की शीघ्र गति और प्रसंगों में हास्य-करुण का संयोजन इसे रंगमंच की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली बनाते हैं [3, 6]।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी नाटक में कुछ संकेत महत्त्वपूर्ण हैं। पुराणों की वंशावली में उज्जयिनी के प्रद्योत वंश के राजाओं में पालक का नाम मिलता है, और नाटक का दुष्ट शासक भी पालक नाम से ही चित्रित है। अनेक विद्वान इस साम्य को यह मानने का आधार बनाते हैं कि कवि ने किसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अपनी कल्पना के ताने-बाने में उपयोग किया है, यद्यपि नाटक की घटनाओं को ऐतिहासिक तथ्य मान लेना उचित नहीं है [2, 4]। उज्जयिनी उस समय व्यापारिक और सांस्कृतिक केन्द्र थी, इसलिए सार्थवाह चारुदत्त, गणिका वसन्तसेना और बहुविध नागरिकों की उपस्थिति ऐतिहासिक यथार्थ के अनुरूप प्रतीत होती है। यही कारण है कि समाजशास्त्रियों और इतिहासकारों ने भी इस नाटक को प्राचीन भारतीय नगर-जीवन के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत माना है [8]।

कालिदास, भवभूति, भास और विशाखदत्त जैसे नाटककारों की तुलना में शूद्रक की विशेषता यह है कि उन्होंने राजा-महाराजाओं और देवताओं की कथाओं के स्थान पर नगर के साधारण जन को केन्द्र में रखा। कालिदास के नाटक सौन्दर्य और आदर्श की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित हैं, भवभूति का नाटक करुणा और गम्भीर चिन्तन का, तथा विशाखदत्त का मुद्राराक्षस राजनीति के कूटनीतिक दाँव-पेंचों का नाटक है; किन्तु दैनिक जनजीवन की इतनी विविधता और जीवन्तता केवल 'मृच्छकटिकम्' में उपलब्ध होती है। इसी कारण अनेक विद्वानों ने इसकी तुलना यूरोपीय सामाजिक नाटकों से की है और इसे संस्कृत नाट्य-साहित्य की सर्वाधिक लोकधर्मी कृति माना है [5, 10]।

संस्कृत के नाटकों में केवल 'मृच्छकटिकम्' को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसे सार्वभौमिक कहा जा सके, यह यथार्थवाद के तत्त्वों से युक्त एक सामाजिक नाटक है। यहाँ हमें दैनिक जीवन से सम्बद्ध एक सजीव कथावस्तु मिलती है। विश्व की किसी भी भाषा में इसके पात्र, परिस्थितियाँ और समस्याएँ तथा कार्य व्यापार किसी भी समय प्राप्त हो सकते हैं। दैनन्दिन

व्यवहार में घटित होने वाली घटनाओं का वास्तविक चित्रण है, अतएव यह नाटक (प्रकरण) इतना लोकप्रिय हुआ है कि विश्व की अनेक भाषाओं में इसे अनुवादित किया गया है।
इस लोकप्रियता के ऐतिहासिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एच.एच. विल्सन ने 'सेलेक्ट स्पेसिमेन्स ऑफ़ द थिएटर ऑफ़ द हिन्दूज़' में इसका अंग्रेज़ी रूपान्तर प्रस्तुत किया, तत्पश्चात् बोएटलिंक द्वारा सम्पादित संस्करण (1877) और जर्मन अनुवादों ने इसे यूरोप के विद्वानों तक पहुँचाया, और आर्थर डब्ल्यू. राइडर का 'द लिटिल क्ले कार्ट' (1905) आज भी अंग्रेज़ी का सर्वाधिक प्रचलित पूर्ण अनुवाद माना जाता है [2, 7]। बीसवीं शताब्दी में इस कथा ने रंगमंच और चलचित्र दोनों को प्रेरित किया; हबीब तनवीर ने 'मिट्टी की गाड़ी' के नाम से इसकी रंगमंचीय प्रस्तुति की और गिरीश कर्नाड ने इसी कथा के आधार पर 'उत्सव' (1984) फ़िल्म का निर्देशन किया। यूरोपीय रंगमंच पर भी इसके रूपान्तर प्रस्तुत हुए हैं। यह तथ्य सिद्ध करता है कि निर्धन किन्तु सच्चरित्र व्यक्ति के प्रति समाज की उपेक्षा, सत्ता का दुरुपयोग, भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था और निःस्वार्थ प्रेम जैसे विषय किसी एक युग या देश की सीमा में आबद्ध नहीं हैं।
साहित्यशास्त्र की कसौटी पर भी 'मृच्छकटिकम्' का मूल्यांकन आवश्यक है। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में काव्य की परिभाषा 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' (साहित्यदर्पण १/३) कहकर दी है, और आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है — 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः' (ध्वन्यालोक १/१)। भरत के रस-सूत्र के अनुसार रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है —

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः । (नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय)

इस कसौटी पर देखा जाए तो 'मृच्छकटिकम्' में चारुदत्त और वसन्तसेना का प्रेम श्रृंगार रस का आलम्बन बनता है, चारुदत्त की निर्धनता और वध-स्थल के दृश्य करुण रस को उभारते हैं, तथा शकार और विदूषक के प्रसंग हास्य रस का परिपाक करते हैं। श्रृंगार का यह चित्रण परम्परागत संस्कृत नाटकों की तरह केवल राजोद्यान या अन्तःपुर तक सीमित न होकर नगर की गलियों, वेश्यागृहों, द्यूतशालाओं और चाण्डालों की बस्ती तक विस्तृत है। रस-निष्पत्ति का यह क्षेत्र-विस्तार इसे अन्य नाटकों से अलग करता है। ध्वनि की दृष्टि से भी नाटक में अनेक स्थलों पर अभिधा की अपेक्षा व्यंजना अधिक प्रभावी है; उदाहरणार्थ, मिट्टी की गाड़ी में आभूषण रखना केवल एक घटना नहीं, बल्कि इस भाव का प्रतीक है कि सच्चे प्रेम में धन गौण हो जाता है और हृदय की उदारता प्रमुख हो जाती है।
नाट्यशास्त्र (अध्याय १४) में प्रवृत्ति और धर्मी के आधार पर नाट्य के दो प्रकार बताए गए हैं — लोकधर्मी और नाट्यधर्मी। लोकधर्मी वह अभिनय है जो लोक-व्यवहार के स्वाभाविक

रूप का अनुकरण करता है, जबकि नाट्यधर्मी में स्थापित रंगमंचीय रूढ़ियों और अलंकरण का अधिक प्रयोग होता है। 'मृच्छकटिकम्' में लोकधर्मी प्रवृत्ति की प्रधानता है; इसके पात्र सामान्य जनों की भाँति बोलते और व्यवहार करते हैं, उनकी भाषा में लोकोक्तियाँ, मुहावरे और अनुभवजन्य सूक्तियाँ मिलती हैं, और घटनाएँ किसी देवी चमत्कार के बजाय मानवीय कार्य-कारण पर आधारित हैं। भाषा की यह सहजता कवि की शैली की भी विशेषता है। शूद्रक की भाषा में कालिदास जैसा अलंकृत माधुर्य और भवभूति जैसी दीर्घ समासान्वित गम्भीरता नहीं मिलती, बल्कि सरलता, प्रवाह और चित्रात्मकता मिलती है; उपमा आदि अलंकार भी प्रायः दैनिक जीवन के उपकरणों और अनुभवों से लिए गए हैं। यही कारण है कि सामान्य पाठक को भी नाटक का भाव समझने में कठिनाई नहीं होती [1, 5]।

कुछ पाश्चात्य आलोचकों ने नाटक की संरचना में शिथिलता की ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार नाटक के आरम्भिक अङ्कों में कथा की गति धीमी है, अनेक प्रसंग (जैसे द्यूत और संवाहक का प्रसंग) मुख्य कथा से कम सम्बद्ध प्रतीत होते हैं, और आर्यक की क्रान्ति का प्रवेश कुछ आकस्मिक लगता है [3]। परन्तु भारतीय दृष्टि से देखें तो यही प्रसंग नाटक के यथार्थवादी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं; द्यूतशाला का दृश्य उस समाज की झाँकी देता है जिसमें चारुदत्त और वसन्तसेना रहते हैं, और संवाहक का प्रसंग आगे चलकर वसन्तसेना के जीवन-रक्षण में निर्णायक सिद्ध होता है। अतः जो प्रसंग पहली दृष्टि में अनावश्यक लगते हैं, वे वस्तुतः नाटक की समग्र संरचना में सार्थक हैं।

नवम अङ्क का न्याय-दृश्य नाटक का सर्वाधिक विचारोत्तेजक अंश है। यहाँ अधिकरणिक, श्रेष्ठी और कायस्थ राजसभा के सदस्य हैं, और शकार अपने प्रभाव से सत्य को दबाना चाहता है। वादी के रूप में शकार, प्रतिवादी के रूप में चारुदत्त, साक्षी के रूप में वसन्तसेना की माता, और विविध साक्ष्य — यह सब आधुनिक न्याय-प्रक्रिया के तत्त्वों की याद दिलाता है। मनुस्मृति में सभासदों के कर्तव्य के विषय में अत्यन्त कठोर चेतावनी दी गई है कि जहाँ धर्म अधर्म द्वारा और सत्य असत्य द्वारा मारा जाता है और सभासद देखते रहते हैं, वहाँ वे सभासद स्वयं मारे जाते हैं —

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्ष्यमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ (मनुस्मृति ८/१४)

नाटक में न्यायाधीश अपने मन में चारुदत्त की निर्दोषता का अनुभव करते हुए भी राजशक्ति के भय से सत्य का पक्ष खुलकर नहीं ले पाता। इस प्रकार शूद्रक ने मनुस्मृति के इस आदर्श और तत्कालीन न्याय-व्यवस्था की वास्तविकता के बीच के अन्तर को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि इस दृश्य को आज भी न्याय-व्यवस्था की

स्वतन्त्रता पर विचार करने के लिए एक सशक्त साहित्यिक उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

आधुनिक सन्दर्भ में 'मृच्छकटिकम्' की प्रासंगिकता अनेक स्तरों पर देखी जा सकती है। निर्धन व्यक्ति के प्रति समाज की संवेदनहीनता आज भी वैसी ही है जैसी चारुदत्त के समय में थी। सत्ता से जुड़े व्यक्ति द्वारा कानून के दुरुपयोग, पीड़िता के विरुद्ध हिंसा और पीड़ित को ही अभियुक्त बनाने की प्रवृत्ति — ये समस्याएँ आज भी समाचार-पत्रों का विषय हैं। इसी प्रकार जाति और व्यवसाय के आधार पर किसी व्यक्ति का मूल्यांकन करने की मानसिकता, जिस पर नाटक में सूक्ष्म प्रहार है, आज भी समाप्त नहीं हुई है। नाटक का यह सन्देश कि अन्तिम विजय सत्य, करुणा और न्याय की होती है, किसी एक काल का नहीं, बल्कि सार्वकालिक है। शिक्षा की दृष्टि से भी इस नाटक का अध्ययन विद्यार्थियों को संस्कृत साहित्य के उस पक्ष से परिचित कराता है जो प्रायः आदर्शवादी और पौराणिक माना जाता है, और इसके द्वारा वे यह समझ पाते हैं कि संस्कृत साहित्य में भी यथार्थवादी और समाजोन्मुख परम्परा विद्यमान रही है [9, 10]।

निष्कर्षतः 'मृच्छकटिकम्' साहित्य और यथार्थ के सुन्दर समन्वय का नाटक है। साहित्य जब समाज का दर्पण बनता है तो उसमें अच्छाई और बुराई दोनों का प्रतिबिम्ब आता है, और शूद्रक ने दोनों को समान निष्ठा के साथ चित्रित किया है। नाट्यशास्त्र की उस स्थापना को कि नाट्य में लोक का सुख-दुःखमय स्वभाव ही अभिनीत होता है, इस प्रकरण ने सर्वाधिक सफलतापूर्वक चरितार्थ किया है। जाति-व्यवस्था, स्त्री-स्थिति, द्यूत, मदिरा, दास-प्रथा, निर्धनता, भ्रष्ट न्याय और निरंकुश राज्य-व्यवस्था — इन सभी का चित्रण समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ की तरह भी उपयोगी है और साहित्यिक कृति के रूप में भी हृदयस्पर्शी। यही कारण है कि दो सहस्र वर्षों के लगभग लम्बे कालखण्ड के बाद भी यह नाटक पाठकों और दर्शकों को उतना ही प्रभावित करता है, और संस्कृत साहित्य में यथार्थवाद की प्रतिनिधि रचना के रूप में अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है।

सन्दर्भ-सूची

शूद्रक, मृच्छकटिकम्, सं. एम.आर. काले, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

Ryder, Arthur W. (अनु.), The Little Clay Cart (Mrcchakatika), Harvard Oriental Series, Vol. 9, Harvard University Press, 1905

Keith, A.B., The Sanskrit Drama in its Origin, Development, Theory and Practice, Oxford University Press, 1924

Macdonell, A.A., A History of Sanskrit Literature, William Heinemann, London, 1900

Winternitz, M., A History of Indian Literature, Vol. III, University of Calcutta, 1959

Dasgupta, S.N. and De, S.K., A History of Sanskrit Literature: Classical Period, Vol. I, University of Calcutta, 1947

Wilson, H.H., Select Specimens of the Theatre of the Hindus, Calcutta, 1827

Basham, A.L., The Wonder That Was India, Sidgwick & Jackson, London, 1954

उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन/शारदा मन्दिर, वाराणसी

द्विवेदी, कपिलदेव, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १ एवं १८

धनञ्जय, दशरूपक (धनिक-कृत अवलोक सहित), तृतीय प्रकाश

मनुस्मृति, अध्याय १, ३, ५, ७, ८ एवं ९

श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४

ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ३४ (अक्षसूक्त)

कौटिल्य, अर्थशास्त्र, सं. आर.पी. कांगले, University of Bombay, 1960-65

वात्स्यायन, कामसूत्र, षष्ठ अधिकरण (वैशिक)

भर्तृहरि, नीतिशतक

विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद

आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत

भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय ६ एवं १४।